हज़रत मुहम्मद (सल्ल.)
एक महान समाज-सुधारक

लेखक

प्रो. मिर्ज़ा रफ़ीउद्दीन अहमद

अनुवादक

ज़ियाउल क़मर

सूची

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.)
एक महान समाज-सुधारक

यह लेख 22 नवम्बर, 1988 ई० को हुसैनी सोसाइटी द्वारा आयोजित 'जलस-ए-सीरत' में पढ़ा गया।

दुनिया में ऐसे तो लाखों पैग़म्बर और सुधारक आते रहे और बड़े-बड़े इनक़िलाब लाते रहे। लेकिन जो इनक़िलाब मुहम्मद (सल्ल०) के द्वारा आया और जिस प्रकार और जिस थोड़ी अवधि में आया उसका उदाहरण दुनिया के इतिहास में न कभी मिला और न मिलेगा।

आप (सल्ल०) ने इस्लाम को जिस प्रकार लोगों के सामने प्रस्तुत किया वह दूसरे धर्मों से नितान्त भिन्न है। विशेष रूप से इन अर्थों में कि यह एक सामाजिक आन्दोलन था, जिसका उद्देश्य दुनिया में न्याय की स्थापना और शोषण को समाप्त करना था। इस आन्दोलन ने न केवल पूरी क़ौम का स्वभाव बदल दिया बल्कि समाज के आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचे को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया। यह एक चमत्कार था—ऐसा चमत्कार जिससे दुनिया के बड़े-बड़े बुद्धिमान और विचारक आश्चर्य में पड़ गए।

नबी (सल्ल०) के समय अरब की परिस्थिति

छठी शताब्दी ई० के अन्तिम काल में अर्थात 571 ई० में जब पैग़म्बर (सल्ल०) अरब की धरती पर पधारे, उस समय अरब का समाज न केवल अज्ञानग्रस्त था बल्कि पूर्णतः अज्ञानता में डूबा हुआ था। उसमें वे समग्र अनिष्ट परम्पराएँ और अमानवीय व गंदे रीति-रिवाज प्रचलित थे जो मानवता को पशुता के स्तर पर पहुँचा देते हैं। यह एक अंधकारमय युग था जिसमें मानवता बर्बरता और पशुता के पैरों तले दम तोड़ रही थी।

सामाजिक निरीक्षण

किसी भी समाज को समझने के लिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री सी० राइट मिल्स (C. Wright Mills) ने तीन बातें बताई हैं—

1. उस समाज का ढाँचा किस प्रकार का है और उसके विभिन्न विभाग

एक-दूसरे से किस प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं ?

2. मानव-इतिहास में उस समाज का क्या स्थान है, और मानवता के सर्वांगीण विकास का अर्थ उसके यहाँ क्या समझा जाता है ?

3. और किस प्रकार के लोगों का उस समाज पर वर्चस्व है ?

अरब के समाज को इन तीनों प्रश्नों को लेकर देखा जाए तो प्रत्योत्तर में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं—

(1) यह क़बीलों में विभक्त और भेदभाव पर आधारित समाज था, इसमें समाज के विभिन्न अंग एक-दूसरे का शोषण करते थे। यही उनका पारस्परिक सम्बन्ध था और वे परस्पर एक-दूसरे के साथ विरोधात्मक नीति अपनाए हुए थे। काले-गोरे में भेदभाव तथा ऊँच-नीच की अवधारणाएँ व मान्यताएँ उस समाज का विशिष्ट गुण बन चुकी थीं।

(2) मानव इतिहास में उस समाज का स्थान अत्यन्त निम्न था। मानवता से यह समाज कोसों दूर था, क्योंकि यहाँ तो धन की पूजा होती थी और मानवता को धन के पैरों तले कुचला जाता था। मानवता के उत्थान की कोई संभावना इस समाज में शेष न थी।

(3) जिन लोगों को उस समय के समाज में सत्ता और अधिकार प्राप्त था वे धन के पुजारी, भोग-विलास में लिप्त, अहंकारी, ऊँच- नीच के ध्वजावाहक तथा शोषण के समर्थक और मानवता के उन्मूलक थे। सत्य की धारणा उनमें सिरे से न थी। वे असत्य और अनैतिकता की जीती-जागती तस्वीर थे।

यह तो था उस समाज का एक समग्र विश्लेषण जो समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण या सर्वेक्षण पर आधारित है। यह मैं इसलिए बता रहा हूँ कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) दुनिया में पधारे तो आपके सामने कितनी बड़ी चुनौती थी. . . . यह चुनौती थी एक बिगड़े हुए समाज को एक मानवतावादी समाज में बदलने की।

अरब-समाज के अमानवीय पक्ष

युद्धप्रियता

युद्धप्रियता की यह हालत थी कि छोटी से छोटी बात पर लड़ना-मरना और एक-दूसरे का सिर काट लेना उनकी दृष्टि में एक मामूली बात थी।

क़बीलों में बँटा होना

अरब समाज छोटे-छोटे क़बीलों में विभक्त था और वहाँ का हर क़बीला दूसरे क़बीले से और हर ख़ानदान दूसरे ख़ानदान से लड़ने में व्यस्त था। लड़ाइयों का सिलसिला वर्षों तक चलता रहता था। उन लड़ाइयों को इतिहासकार "अय्यामुल अरब" (अरब की विपत्ति के यादगार दिन) कहते हैं, जिनकी संख्या सैकड़ों से अधिक है। 'मीदानी नेशापुरी' (मृत्यु 518 हि०/1124 ई०) ने "किताबुल अमसाल" में उनमें से 132 लड़ाइयों के नाम बताए हैं और कहा, "गणन-कला पूर्णतः उनकी गणना करने में असफल है। इसलिए जो कुछ मैंने बयान किया है उसी पर मुझे सन्तोष करना पड़ा।"

ये वे लड़ाइयाँ थीं जो इस्लाम से चालीस-पचास वर्ष पूर्व लड़ी गईं। क़बीलों के बीच मानव-मित्रता, समानता तथा एक क़ौम होने की भावना सिरे से ही नहीं पाई जाती थी। लड़ने-मरने और मारने को ही अज्ञानकाल का श्रेय और क़बीले की शान समझी जाती थी। हिंसा, निर्दयता, हत्या और लूट-मार की अत्यन्त बुरी घटनाएँ घटित होती रहती थीं।

मदिरापान

मदिरापान जो हर प्रकार की बुराइयों, अत्याचारों, दुष्कर्मों और व्यभिचार का मूल कारण है, अरब के लोगों में उसका इतना अधिक रिवाज था कि हर घर शराबख़ाना बन गया था। शराब के रिवाज का अनुमान इससे हो सकता है कि अरबी भाषा में शराब के ढाई सौ नाम हैं। सभी घरों में शराब की बैठकें लगती थीं। घर की औरतें और बच्चे साक़ी (शराब पिलानेवाले) बनते थे। साथ ही, उनके सामने व्यभिचारिणी (दुश्चरित्र) गानेवाली औरतें गाती-बजातीं और पुरुष उसी नशे की हालत में अश्लीलता की बातें करते। अज्ञानकाल का प्रसिद्ध कवि तुरफ़ा ने भी इन बैठकों में जो अश्लीलता होती थी, उसका चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

जुआबाज़ी

मदिरापान के साथ उनमें जुआ खेलने का भी रिवाज आम हो गया था। जुए में धन-दौलत हारने के पश्चात लोग पत्नी तथा बच्चों तक पर दाँव लगा देते थे। यह जुआबाज़ी, और वह भी शराब की बदमस्ती की हालत में, प्राय: मारपीट और लड़ाई पर समाप्त होती थी। अबस और ज़िबयान की चालीस साल की लड़ाई घुड़दौड़ की जुआबाज़ी का परिणाम थी। धन की प्राप्ति और नाम कमाने के इस अवैध साधन से ख़ानदान के ख़ानदान बरबाद हो जाते थे।

सूदख़ोरी

अरब के इस क़बायली समाज में हर प्रकार की बुराइयों के साथ मानवीय शोषण की एक घिनौनी सूरत सूदख़ोरी थी। सूद का आम तरीक़ा यह था कि एक निश्चित दर पर क़र्ज़ देते थे और उस मूलधन के लौटाने के लिए एक समय निश्चित कर देते थे। जब अवधि समाप्त हो जाती तो उसका तक़ाज़ा करते और अगर कर्ज़दार उसका भुगतान नहीं करता तो उस अवधि में बढ़ोत्तरी कर देते थे और उसके बदले सूद की दर बढ़ा देते थे। परन्तु उसका एक और अत्याचारी रूप भी था कि जब सूद के भुगतान की अवधि समाप्त हो चुकती और कर्ज़दार कर्ज़ का भुगतान नहीं कर पाता तो अवधि बढ़ा देते, साथ उसके बदले मूलधन में भी बढ़ोत्तरी कर लेते, यहाँ तक कि कभी-कभी यह बढ़ोत्तरी दुगुनी-चौगुनी तक पहुँच जाती थी। और इस प्रकार बढ़ोत्तरी होते-होते क़र्ज़दार की कुल सम्पत्ति डूब जाती। यह मामला अधिकतर ग़रीबों और किसानों के साथ होता था, जिसका परिणाम यह था कि ग़रीबों और किसानों का पूरा वर्ग कुछ धनवानों के हाथ बंधक था। अगर बंधक रखनेवाले अपने बंधक रखे हुए माल एवं सामान को अवधि समाप्त होने तक नहीं छुड़ा पाता तो बंधक रखनेवाला (महाजन) उसका मालिक हो जाता था। निर्धन लोग अपने धन-दौलत को ही नहीं, अपनी औरतों और बच्चों तक को भी बंधक रखवाते।

(बुख़ारी, कअ्ब बिन अशरफ़ द्वारा उल्लिखित)

तात्पर्य यह कि यह एक धन का पुजारी समाज था। दौलत के आगे मनुष्य का कोई मूल्य न था। दिखावा, भोग-विलास (ऐयाशी), कठोरता एवं क्रूरता का चलन आम था। पूँजीवाद का तो उस समय जन्म नहीं हुआ था, परन्तु क़बायली समाज पूँजीवाद के सभी प्रकार के अभिशापों से भरा हुआ था।

लूटमार

अरब में प्रतिदिन की लूटमार ने क़बीले को लुटेरा और डाकू बना दिया था। कुछ क़बीलों में इस प्रकार के कुछ विशेष जत्थे बन गए थे जिन्होंने लूटमार को ही अपनी आजीविका का साधन और दिनचर्या बना लिया था। एक क़बीला दूसरे क़बीले के धन-दौलत, मवेशी ही नहीं, बाल-बच्चों तक पर डाका डालने के लिए तैयार रहते थे। व्यापारियों और सौदागरों के क़ाफ़िले (जत्थे) बिना किसी भारी इनाम के किसी मैदान से सही-सलामत न गुज़र सकते थे। एक क़बीला दूसरे क़बीले की औरतों और बच्चों को पकड़कर किसी दूसरे के हाथ बेच दिया करते थे और मवेशियों को हाँककर ले जाते थे। सफल डाकू अपने कारनामों को कविताबद्ध करते और उसे गर्वपूर्वक पढ़ते थे।

चोरी

डकैती के अतिरिक्त, परिस्थिति से मजबूर होकर, देहातियों (बद्दुओं) में चोरी का भी चलन था। विभिन्न क़बीलों के ऐसे बहादुर जो क़बीलों में अपना कोई विशिष्ट स्थान नहीं रखते थे, वे विशेषकर चोरी का धंधा अपना लेते थे और इसकी चर्चा गर्व के साथ करते थे।

बलात्कार और अश्लीलता

बलात्कार और दुराचार आम था। इब्न अब्बास (रज़ि०) ने बयान किया है कि अज्ञानकाल में लोग यद्यपि खुलेआम बलात्कार को जायज़ नहीं समझते थे, परन्तु छिपकर करने में कोई हर्ज नहीं समझते थे। (तफ़सीर तबरी)

व्यभिचारिणी अपने घरों के सामने झण्डियाँ लगाकर बैठती थीं और उनकी संतान वैध और हलाल संतान के बराबर समझी जाती थीं। बड़े-बड़े रईस अपने घर की लौंडियों (दासियों) को आदेश देते थे कि व्यभिचार के द्वारा कहीं से धन कमाकर लाएँ और उनकी भेंट चढ़ाएँ। इन व्यभिचारों पर कविता में प्रशंसा के पुल बाँधे जाते थे।

निर्लज्जता

काबा के हज में हज़ारों आदमी एकत्र होते, लेकिन (क़ुरैश के सिवा) शेष सभी लोग बिलकुल नंगे होकर काबे का चक्कर लगाते। औरतें जब नंगी होकर चक्कर लगातीं तो लोगों से कहतीं कि हमको कोई इतना कपड़ा दे दो, जिससे गुप्तांगों को ढाँका जा सके।

महिलाओं पर अत्याचार

सौतेली माँओं पर अधिकार जमाकर उन्हें पत्नी बना लेते थे। महिलाओं का विरासत में कोई हिस्सा न था। निकाह की कोई सीमा नहीं थी। तलाक़ के लिए कोई मुद्दत और इद्दत भी न थी, अर्थात जब तक पति न चाहे औरत न पति के पास रह सकती थी और न ही किसी और से विवाह कर सकती थी।

(सीरतुन्नबी, लेखक सैयद सुलैमान नदवी, भाग—4)

बेटी की हत्या

बेटी की हत्या का रिवाज आम था। लड़की पैदा होती तो उसको मैदान में ले जाकर ज़मीन में ज़िन्दा गाड़ देते थे। एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आकर बताया था कि उसने अपने हाथ से आठ लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ दिया था। लोग लड़कियों के अस्तित्व को संकट और मुसीबत समझते थे। माँएँ स्वयं अपनी लड़कियों को क़ुरबानी के लिए हवाले कर देती थीं, और अरबों के लिए किसी को दामाद बनाकर लाना लज्जाजनक बात थी।

गुलामी

अरब के भेद-भाववाले समाज का एक बहुत बड़ा अभिशाप गुलामी का रिवाज (दास-प्रथा) था। गुलाम ख़रीदे और बेचे जाते थे और उनके साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता था।

रसूल (सल्ल०) ने इन हालात का सामना किस प्रकार किया?

यह था वह समाज जो एक चुनौती के रूप में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को मिला; एक रूढ़िवादी समाज, जो अपने ग़लत व पुराने रस्मों को छोड़ने को तैयार न था। चालीस साल की उम्र के बाद आप (सल्ल०) ने जब नबी होने का एलान किया तो उस रूढ़िवादिता को चुनौती दी और एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। अल्लाह फ़रमाता है—

> "और जब उनसे कहा जाता है कि अल्लाह ने जो उतारा है उसका अनुसरण करो, तो कहते हैं कि हमने अपने बाप-दादा को जिस तरीक़े पर पाया है, वही हमारे लिए काफ़ी है। क्या उनके बाप-दादा न कुछ जानते हों और न सीधे रास्ते पर हों तब भी वे उन्हीं का अनुसरण करेंगे?" (क़ुरआन—2 : 170)

सत्य और असत्य की जो लड़ाई अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को करनी पड़ी वह वास्तव में इसी रूढ़िवादिता और आधुनिकता की लड़ाई थी। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक रूढ़िवादी, जीर्ण-शीर्ण, न्यायहीन, अमानवीय, शोषण-प्रिय और असमानतापूर्ण समाज के स्थान पर एक आधुनिक, न्यायसंगत, मानवतावादी, समतावादी और शोषण-मुक्त समाज का ढाँचा प्रस्तुत किया। आप (सल्ल०) ने उस अंधकार युग के एक-एक अमानवीय तथा अन्यायपूर्ण रस्म और रिवाज को चुनौती दी और उसे बदलकर रख दिया। यह एक चमत्कार नहीं तो और क्या है कि एक लड़ाकू समाज एक सदाचार प्रिय समाज बन गया, जिसमें मनुष्य की जान को एक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और हत्या, लूटमार, छीन-झपट का स्थान शांति, समझौता और सहयोग ने ले लिया।

क़बीला बन्दी

जो समाज क़बीलों में बटा हुआ था उसमें अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक ऐसी बराबरी और मानव-मित्रता की रूह फूँक दी कि सारे भेदभाव मिट गए। गोरे-काले में भेद, क़बीलों के भेद, दास और स्वतंत्र में भेद, सब समाप्त हो गया। पूरा समाज एक क़ौम और पूरी क़ौम एक लोहे की दीवार बन गई। जातीय भेदभाव को मिटाने का यह एक अद्‌भुत उदाहरण है। भारत में गांधी जी ने दलितों व पिछड़े लोगों को ऊँची जातिवालों के साथ सामाजिक समता और बराबरी दिलाने की असाधारण कोशिश की, यहाँ तक कि स्वयं भी मैला ढोनेवालों की बस्ती में रहे। 1955 ई० में छुआ-छूत के विरुद्ध क़ानून भी पास हुआ, परन्तु छुआ-छूत अभी तक बाक़ी है। अब भी उन्हें मन्दिरों में जाने से रोका जाता है और उन्हें सामाजिक बराबरी अब तक नहीं मिल सकी है।

समानता

असमानता को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इस प्रकार समाप्त किया कि जो समाज धन का पुजारी था और जिसमें मनुष्य की प्रतिष्ठा उसकी दौलत और शक्ति से आंकी जाती थी वहाँ आप (सल्ल०) ने लोगों के दिलों में यह विश्वास बैठा दिया कि समाज में बड़ा वह नहीं है जिसके पास दौलत अधिक है, बल्कि बड़ा वह है जिसके दिल में सबसे अधिक अल्लाह का भय (तक़वा) है। ईशभय आत्मा की उस अनुभूति का नाम है जिसके आधार पर हर काम में खुदा के आदेशानुसार व्यवहार करने की अत्यधिक श्रद्धा और उसके विरोध से अत्यधिक घृणा उत्पन्न होती है। सूरा अल-मुल्क में अल्लाह ने फ़रमाया—

"और जो लोग अनदेखे अपने परवरदिगार से डरते हैं उनके लिए इनाम और अच्छा बदला है।" (क़ुरआन, 67:12)

जब यह निश्चित हो गया कि जिसमें सबसे अधिक ईश्वर का भय है वही सबसे बड़ा है तो फिर मनुष्य की प्रतिष्ठा उसके माल व दौलत से नहीं, बल्कि उसके आचरण और व्यवहार से होने लगी। समाज का ढाँचा ही बदल गया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री अलेक्ज़ इंकलस (Alex Inkeles) ने मानव की महानता में विश्वास और न्याय के बटवारे की आधुनिकता को प्रमुख अंग बताया है। इस प्रकार इस्लाम ने एक आधुनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और मात्र प्रस्तुत ही नहीं किया बल्कि उसे व्यावहारिकता का रूप देकर दिखा दिया।

शराब बन्दी

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि शराब किस प्रकार अरबवासियों की रग-रग में घुस गई थी। जब क़ुरआन पाक की यह आयत अवतरित हुई—

"ऐ ईमानवालो! शराब, जुआ, बुत और पांसे नापाक और शैतान के काम हैं, तो इनसे बचो ताकि सफलता प्राप्त हो।" (क़ुरआन, 5 : 90)

तो उस समय भी शराब का रिवाज जारी था। सहीह बुख़ारी में स्वयं हज़रत अनस (रज़ि०) की ज़बानी रिवायत है—"मैं अबू उबैदा, उबई इब्न कअ्ब और अबू तलहा को शराब पिला रहा था कि अचानक एक व्यक्ति ने आकर कहा कि शराब हराम (निषिद्ध) हो गई। उस सभा में हाफ़िज़ इब्न हजर के कथनानुसार ग्यारह व्यक्ति थे और नशे में झूम रहे थे (फ़तहुल बारी, भाग 10)। तथापि ज्यों ही यह आवाज़ आई कि रसूल (सल्ल०) ने शराब को हराम घोषित कर दिया है तो किसी ने पूछा तक नहीं और एकाएक शराब के मटके और प्याले तोड़ डाले। यह न केवल अबू तलहा के घर का हाल था, बल्कि सारे मदीने के गली-कूचों में शराब की नालियाँ बह गईं।"

बुख़ारी शरीफ़ में है—

"मदीना की गलियों में शराब बहती फिरती थीं।"

हम जानते हैं कि शराब के प्रति आकर्षण शराबी के अन्दर कितना अधिक होता है। लेकिन वहाँ दूसरा ही हाल हो गया। घड़े तोड़कर नालियों में बहाए गए और फिर कभी शराब को हाथ न लगाया गया। उस समय न तो कोई नशाबन्दी पदाधिकारी (Prohibition Officer) होता था, न कोई सरकारी क़ानून था और/न ही पुलिस थी जो उसे लागू करती, लेकिन यह केवल अल्लाह के रसूल

(सल्ल०) के व्यक्तित्व का प्रभाव और मानवीय आचरण को बदलने की शक्ति थी कि एक पूरा समाज मदिरापान को छोड़कर उसे निषिद्ध घोषित कर देता है। यह एक चमत्कार नहीं तो क्या था?

जुआ

इसी प्रकार जुआ, सूदख़ोरी, व्यभिचार, महिलाओं पर अत्याचार, लड़कियों को जीवित गाड़ देना, लूटमार, हत्या और दासों पर अत्याचार जैसे अनेक अनैतिक कुकृत्य बन्द हो गए।

सूद (ब्याज)

जो लोग सूद दर सूद खाते थे उन्होंने सूद से इतना परहेज़ कर लिया कि अगर किसी को ऋण दिया तो उसकी दीवार की छाया में भी न बैठते थे कि कहीं यह ऋण के बदले लाभ उठाना न हो जाए। यह एक चमत्कार नहीं तो क्या है कि कहाँ तो ऋणी का माल-जायदाद यहाँ तक कि बाल-बच्चे तक ज़ब्त कर लिए जाते थे और कहाँ लोग ऋणी को ऋण देकर उससे दूर भागने लगे कि कहीं अनजाने में ऋण के बदले कोई लाभ न उठा लें। यह बात स्पष्ट हो कि उस समय न कोई सरकार थी, न क़ानून, न पुलिस जिसने सूद को निषिद्ध और हराम घोषित किया हो।

ग़ुलामी

ग़ुलामी के अमानवीय रिवाज को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया गया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के आन्दोलन ने ग़ुलामों की स्वतंत्रता और उनके साथ उत्तम व्यवहार को एक अभिन्न अंग बना लिया। आप (सल्ल०) ने कहा—

> "जिसको ख़ुदा ने तुम्हारे अधीन कर दिया उसको वह खिलाओ जो तुम स्वयं खाते हो, और वही वस्त्र दो जो तुम स्वयं पहनते हो, और उसको इतना काम न दे दो जो उसपर भारी हो जाए, और जो भारी काम दो तो उसके काम को पूरा करने में ख़ुद भी साथ मिलकर उसकी सहायता करो।" (सहीह बुख़ारी, भाग —2)

आप (सल्ल०) के इस आदेश पर जब सहाबा (रज़ि०) ने चलना आरम्भ कर दिया तो यह भेद करना कठिन हो गया कि मालिक कौन है और दास कौन (सहीह बुख़ारी, भाग–2)। इस प्रकार ग़ुलामी वास्तव में समाप्त हो गई। इस सुधार के पीछे भी कोई सरकारी या राजनीतिक शक्ति या पुलिस या फ़ौज या

क़ानून न था। यह सब चमत्कार था रसूल (सल्ल०) के महानतम व्यक्तित्व का। रंग और वंश का भेद इस प्रकार समाप्त हो गया कि वही अरब जो काले लोगों से घृणा करते थे उन्हीं अरबों में एक हब्शी ग़ुलाम हज़रत बिलाल (रज़ि०) मस्जिदे नबवी के मुअज़्ज़िन (अज़ान देनेवाला) की हैसियत से प्रतिष्ठित हुए और उन्हें दुनिया में एक उच्च स्थान प्रदान किया गया।

इक़बाल के शब्दों में—

एक ही सफ़ में खड़े हो गए महमूदो अयाज़
न कोई बन्दा रहा और न कोई बन्दा नवाज़।
बन्दओ साहिबो मुहताजो ग़नी एक हुए,
तेरी सरकार में पहुँचे तो सभी एक हुए।

आर्थिक बदलाव

इस प्रकार समाज का आर्थिक ढाँचा ऐसा बदला कि सूदख़ोरी और ग़ुलामी का अमानवीय रिवाज समाप्त हो गया। उत्तम ऋण ने सूदख़ोरी का स्थान ले लिया और पूँजीवादी मानसिकता के स्थान पर ग़रीबों, यतीमों और लाचारों को सहारा देने का रिवाज चल पड़ा। अब मनुष्य को धन की अपेक्षा श्रेष्ठता दी जाने लगी। सूरा तौबा में अल्लाह ने फ़रमाया—

"ऐ ईमान लानेवालो! किताबवालों के अधिकांश धर्मज्ञाता और संसार त्यागी संत लोगों का माल नाजायज़ तरीक़े से खाते हैं और अल्लाह के मार्ग से रोकते हैं। जो लोग सोना और चाँदी जमा करके रखते हैं तथा उन्हें अल्लाह के मार्ग में ख़र्च नहीं करते उन्हें दुखदायिनी यातना की मंगल सूचना दे दो, जिस दिन इस (सोने-चाँदी के ढेर) पर जहन्नम की आग दहकाई जाएगी, फिर उससे इनके ललाट और इनके पहलू और इनकी पीठों को दाग़ा जाएगा। (और कहा जाएगा) यह वही है जिसको तुमने अपने लिए जमा कर रखा था, तो अब अपने जमा करने का मज़ा चखो।" (क़ुरआन—9 : 34-35)

इस प्रकार क़ुरआन पाक ने पूँजीवादी विचारधारा के स्थान पर एक समाजवादी विचारधारा (Socialistic Approach) को उभारा और सामाजिक न्याय पर बल दिया।

सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक स्तर पर असमानता के स्थान पर समता स्थापित हो गई।

गोरे-काले और अमीर-ग़रीब का भेद समाप्त हो गया और श्रेष्ठता की कसौटी दौलत नहीं बल्कि तक़्वा (ईश-भय) बन गया।

सांस्कृतिक परिवर्तन

सांस्कृतिक और नैतिक स्तर पर दुराचार, बलात्कार और शराब सब बन्द हो गए और समाज ने एक साफ़-सुथरा और पवित्र रूप धारण कर लिया। औरतों पर अत्याचार बन्द हो गए, औरतों ने अश्लीलता के स्थान पर शालीनता और उत्तम आचरण को अपनाया और बदकारी (व्यभिचार) को इतना घिनौना समझा जाने लगा कि उसके लिए कठोर सज़ा निर्धारित की गई। औरतों को विरासत में हिस्सा मिला और भ्रूण-हत्या अर्थात नवजात बच्चियों की हत्या का रिवाज भी समाप्त हो गया। स्पष्ट रहे कि भारत में अभी तक राजस्थान, तमिलनाडु और अन्य भागों में नवजात बच्चियों की हत्या का रिवाज-सा है। जबकि इसे अवैध घोषित हुए बहुत दिन हो गए। (India Today 31st Oct., 1988)

सती प्रथा के विरुद्ध राजाराम मोहन राय ने 19वीं शताब्दी में आवाज़ उठाई थी। इसके विरुद्ध क़ानून भी पास हुआ, परन्तु 1987 ई० में राजस्थान में देवराला नामक स्थान पर सती की रस्म को बड़ी धूम-धाम से मनाया गया, जिसमें एक विधवा रूप कुँवर ने अपने पति की मृत्यु पर अपने आपको अग्नि को समर्पित कर दिया। (देखिए : Northern India Patrika, Dated 16th Dec., 1988 और The Times of India 27th Dec., 1987) । इससे पूर्व भी सती की कई घटनाएँ हुईं। क़ानून और देश के समाज सुधारक अभी तक इसे रोक न सके।

राजनीतिक न्याय की स्थापना

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के इस इनक़िलाब ने व्यक्तिगत या क़बाइली अधिनायकत्व के स्थान पर परामर्शदात्री सभा की स्थापना की और विरासती राज्य न रहा, बल्कि चुनाव पर आधारित हुआ। जनता को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिला। शासक को शासित के आगे वास्तविक रूप से जवाबदेह होना पड़ा और यह तय पाया कि शासक को शासित के जीवन स्तर से उच्च स्तर पर रहना जायज़ नहीं है, जैसा कि ख़ुलफ़ाए राशिदीन (आदरणीय सत्यनिष्ठ ख़लीफ़ाओं) ने सिद्ध करके दिखा दिया।

इस प्रकार एक ओर तो पूरी जनता का स्वभाव (Ethos) बदल गया, व्यक्तिगत आचरण बदल गए और दूसरी ओर सामाजिक ढाँचा मानव-शत्रु के रूप को छोड़कर एक मानवता-प्रिय रूप में बदल गया। यह मौलिक परिवर्तन

(Metamorphosis) व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों स्तरों पर हुआ और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के जीवन के केवल बीस वर्षों में।

रसूल (सल्ल०) का कमाल

इन सारे मौलिक परिवर्तनों के पीछे जो एक आश्चर्यजनक बात है और जिस पर मानव की बुद्धि दंग रह जाती है वह यह है कि सभी बदलाव केवल बीस-बाइस सालों में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने प्रस्तुत किए—और उस समाज में प्रस्तुत किया जो एक अनपढ़ समाज था, जहाँ न छापाख़ाने थे, न पत्र-पत्रिकाएँ, न किताबें थीं, न रेड़ियो, न टेलीविज़न थे, न टेलीफ़ोन और न ही आवागमन के वे साधन जो आज उपलब्ध हैं, जैसे—तेज़ गति से चलनेवाली ट्रेनें, मोटर और हवाई जहाज़ इत्यादि। हुकूमत भी संगठित रूप में नहीं थी। न विधानसभा, न लोकसभा, न पुलिस, न फ़ौज। ऐसी परिस्थिति में चालीस वर्ष की आयु में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को नुबुव्वत (पैग़म्बरी) मिली और अपने जीवन काल के बीस-बाइस सालों में इतनी बड़ी क्रान्ति ला दी। यह एक ऐसा कारनामा है जिसका उदाहरण दुनिया में न मिला है और न मिलेगा।

कार्ल मार्क्स (Carl Marx) ने "दास कैपिटल" 1887 ई० में लिखा और रूस की समाजवादी क्रान्ति 1917 ई० अर्थात तीस साल बाद हुई। और उस समय की रूसी क्रान्ति को देखें तो पाते हैं कि रूस के समाज में शिक्षा भी थी और प्रेस भी था, समाचार-पत्र और पुस्तकें भी थीं, और वे सभी संचार के साधन थे जो पैग़ाम (संदेश) को फैलाने के लिए आवश्यक हैं। फिर भी आश्चर्य है कि यह क्रान्ति पूरी न हो सकी। फिर यह कथित क्रान्ति 1994 ई० में अर्थात क्रान्ति के 77 वर्ष बाद सोवियत संघ के बिखराव के साथ ही अपना बचा-खुचा प्रभाव खो बैठी।

न्यूज़ टाइम्स (News Times) के सितम्बर, 1988 के अंक में आयगर अरीविक (Igor Arievich) लिखते हैं—

> "रूस में जब 1917 ई० में क्रान्ति आई तो समाज का ढाँचा तो बदला, लेकिन राष्ट्र का स्वभाव (Ethos) नहीं बदला। वह पूँजीवादी ही बना रहा और उसी पूँजीवादी सोच को लिए हुए रूस के समाज ने समाजवादी ढाँचा अपना लिया।"

लेखक के अनुसार परिणाम यह हुआ कि जनता की शक्ति (Dictatorship of the Proletariate) के स्थान पर दल की शक्ति और दल की शक्ति के स्थान

पर केवल एक व्यक्ति स्टालिन की शक्ति (Dictatorship) ने ले ली। देश में सही आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न न हो सकी। लेखक के कथनानुसार नौकरियाँ और पदवी लोगों की क्षमता के अनुसार न देकर सामाजिक स्तर के आधार पर दिए जाने लगे। यही कारण है कि रूस में Glasnost (स्वतंत्र चिंतन) और Perestorika (नव निर्माण) के आन्दोलन बड़े ज़ोर-शोर से चल पड़े थे। वे सारी बुराइयाँ जो अब तक चलती रही हैं उनका भेद खोला जा रहा है, अर्थात स्वयं रूसी चिंतकों के अनुसार समाजवादी क्रान्ति सही रूप में आई ही नहीं। इस प्रकार ईसाइयत फैली मगर हज़रत ईसा (अलै०) के बाद जैसाकि एक अमेरिकी लेखक Michael Hart ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है—

> "यद्यपि ईसा (अलै०) ही ईसाइयत के विशिष्ट नैतिक और धार्मिक आस्थाओं के कर्णधार हैं, किन्तु ईसाई धर्मज्ञान को विशिष्ट प्रगति देनेवाले 'सेंटपॉल' थे जो ईसाइयत के मुख्य प्रचारक थे और जिन्होंने New Testament के अधिकांश भाग लिखे।" (Reference :- Michael H. Hart, The 100-A Ranking of the Most influential Persons in History. —Hart Publishing INC. New York city, 1978, p. 39).

दुनिया में बड़े-बड़े नेता और सुधारक आए, उन्होंने सुधार का काम किया, परन्तु ऐसा शायद ही कोई सुधारक या नेता रहा हो जिसने अपने जीवन के बीस-बाइस वर्षों में अरब के ऐसे अनपढ़ समाज में जो अज्ञानता और मानव-विरोधी सारी बुराइयों से भरा हुआ हो, व्यक्तिगत रूप से एक-एक व्यक्ति के स्वभाव को, सारी क़ौम के स्वभाव को और समाज के पूरे ढाँचे को पूर्ण रूप से बदल दिया हो। यह एक ऐसा ऐतिहासिक प्रयोग है जो इतिहास की प्रयोगशाला में अनोखा और अकेला है। ऐसा प्रयोग सिवाय एक चमत्कार के और कुछ नहीं हो सकता, और ऐसा चमत्कार सिवाय एक नबी को और नबियों में यह विशिष्टता केवल मुहम्मद (सल्ल०) को प्राप्त है। Michael Hart जिसका अभी ऊपर उल्लेख हुआ है, स्वयं एक ईसाई लेखक हैं। उन्होंने "The 100-A Ranking of the Most Influential Person in History" नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने दुनिया के 100 महान व्यक्तियों का उल्लेख किया है। उनमें हज़रत ईसा (अलै०) भी हैं, बुद्ध भी हैं, कार्ल मार्क्स भी हैं, हज़रत मूसा (अलै०) भी हैं, अशोक भी हैं, कन्फ़्यूशियस भी हैं, फ्रॉयड भी हैं, सेन्ट पाल भी हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि उन सभी एक सौ महानतम व्यक्तियों में उन्होंने पहला नाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का रखा है और पहला अध्याय आप (सल्ल०) ही

पर लिखा है। उन्होंने लिखा है—

"दुनिया के सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों में मुहम्मद (सल्ल०) को प्रथम स्थान पर रखने का मेरा फ़ैसला कुछ लोगों को आश्चर्य में डाल देगा और कुछ विरोध करेंगे, परन्तु वे इतिहास के एक व्यक्ति थे जो धार्मिक और सांसारिक दोनों स्तरों पर पूर्ण रूप से सफल रहे।" (पृष्ठ 33)

उन्होंने भी वही बात कही है जो मैंने ऊपर कही थी। उनके अनुसार—

"इस किताब में उल्लिखित अधिकांश व्यक्तियों को यह लाभ प्राप्त था कि वे सभ्यता के केन्द्र और सांस्कृतिक रूप से बहुत ही प्रगतिशील समाज में जन्मे और पले-बढ़े, जबकि मुहम्मद (सल्ल०) मक्का में पैदा हुए जो दक्षिणी अरब में है। वह उस समय दुनिया का एक पिछड़ा देश था। व्यापार, कला और ज्ञान-विज्ञान से कोसों दूर था।. . . यह अनोखा जोड़ है सांसारिक और धार्मिक प्रक्रिया का, जिसके परिणामस्वरूप मैं समझता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) को मानव इतिहास का एक मात्र सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व समझे जाने का अधिकार प्राप्त है।" (पृष्ठ 40)

यह कौन-सा आकर्षण था, यह कौन-सी शक्ति थी, यह कैसी सत्यवादिता और सत्यनिष्ठा थी जिसने इतनी बाधाओं और कठिनाइयों के होते हुए अपने जीवनकाल के छोटे-से भाग में एक नए समाज को जन्म दिया और उसे चलाकर दिखा दिया। एक आदर्श आचरण दुनिया और विशेषकर मुसलमानों के सामने रख दिया। एक न्यायसंगत जीवन और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित समाज के न केवल सिद्धान्त स्पष्ट कर दिए बल्कि उस समाज को स्थापित करके दिखा दिया।

मुसलमान और आदर्श आचरण

आइए अब हम यह देखें कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के अनुयायी होने का दावा करते हैं, क्या उन सिद्धान्तों का अनुसरण कर रहे हैं? कुरआन मजीद में अल्लाह मुसलमानों से फ़रमाता है—

"तुम वह उत्तम गिरोह हो जिसे मानव के लिए पैदा किया गया है, तुम भलाई का आदेश देते हो और बुरी बातों से रोकते हो और अल्लाह पर 'ईमान' रखते हो।" (कुरआन, 3 : 110)

यह है वह कर्त्तव्य जो मुसलमानों पर डाला गया है। क़ुरआन और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के आदर्श-आचरण के रूप में हमारे हाथों में एक मार्गदीप दिया गया कि हम उससे अँधेरे दूर करें और ख़ुद भी उजाले में चलें और दूसरों को अँधेरे से निकालें। लेकिन हम दूसरों को तो क्या अँधेरे से निकालते ख़ुद ही अँधेरों में खो गए। अब आप ख़ुद विचार करें कि सज़ा के भागी कौन हैं? वे लोग अधिक ज़िम्मेदार हैं जिन्हें मार्गदीप मिला ही नहीं या वे जिन्हें मार्गदीप मिला और वे स्वयं अँधेरों में डूब गए?

यह बात मस्तिष्क से निकाल दीजिए कि केवल मुसलमान के घर में जन्म हो जाने से और एक मुस्लिम जैसा नाम रख लेने से आप पूरे मुसलमान हो गए। क़ुरआन में अल्लाह ने साफ़-साफ़ फ़रमाया है—

> "बद्दू कहते हैं कि हम 'ईमान' लाए। कह दो : तुम ईमान लाए, परन्तु यूँ कहो : हम इस्लाम लाए हैं और अभी 'ईमान' तुम्हारे दिलों में उतरा ही नहीं है। और यदि तुम अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करोगे तो वह तुम्हारी कमाई में से कुछ कम नहीं करेगा, निस्संदेह अल्लाह क्षमा करनेवाला और कृपाशील है।"
>
> (क़ुरआन, 49 : 14)

अर्थात जब तक ईमान पूर्ण रूप से न लाया जाए इस्लाम लाने से हम 'मोमिन' (ईमानवाले) नहीं हो सकते। क़ुरआन मजीद में है—

> "ऐ ईमान लानेवालो! ईमान लाओ अल्लाह पर और उसके रसूल पर, और जो किताब अन्तिम रसूल पर उतरी है और उस किताब पर जिसे वह इससे पहले उतार चुका है।" (क़ुरआन, 4 : 136)

किताब पर ईमान लाने का अर्थ ही यह है कि किताब में बताए गए सिद्धान्तों और शिक्षाओं को माना जाए और उसमें लिखित आदेशों की पाबन्दी की जाए, नहीं तो फिर 'ईमान' लाने का अर्थ क्या हुआ?

क़ुरआन पाक के कुछ और आदेशों पर विचार कीजिए—सूरा बक़रा में बताया गया है—

> "और तुम आपस में एक-दूसरे का माल अवैध रूप में न खाओ, और न इसको (रिश्वतों के तौर पर) हाकिमों के पास पहुँचाओ कि इस तरह तुम जानते-बूझते लोगों के माल का कुछ भाग हक़ मारकर हड़प कर सको।" (क़ुरआन, 2 : 188)

सूरा हूद में है—

"नाप तौल न्याय के साथ किया करो और लोगों को उनकी चीज़ें कम न दिया करो और धरती में बिगाड़ न करते फिरो।"

(क़ुरआन, 11 : 85)

सूरा अल-मोमिनून में अल्लाह तआला ने फ़रमाया—

"जो अपनी अमानतों और अपने वादे का ध्यान रखनेवाले हैं और जो अपनी नमाज़ों की पाबन्दी करते हैं ऐसे ही लोग वारिस होनेवाले हैं 'फिरदौस' (जन्नत) के, और वे उसमें हमेशा-हमेशा रहेंगे।"

(क़ुरआन, 23 : 8-11)

अब ज़रा सोचिए कि हममें से कितने हैं जो दूसरे का हक़ नहीं मारते, घूस लेने और देने से बचे रहते हैं, व्यापार में ईमानदारी दिखाते हैं, अमानतों और वादों का ध्यान रखते हैं। आज अधिकांश लोग दौलत के पुजारी हो गए हैं और समाज में प्रतिष्ठा उसी को अधिक देते हैं जिसके पास दौलत अधिक है, चाहे वह किसी भी तरीक़े से जमा की गई हो। आज हम समाज में सबसे ऊँचा स्थान उसको नहीं देते जिसके दिल में अल्लाह का भय सबसे अधिक है। क्या ये सब बातें 'ईमान' से मेल खाती हैं?

आज कहाँ हैं वे मुसलमान जिनके आचरण में क़ुरआन के आदेशों की पूर्ण झलक दिखाई देती हो और जो सामाजिक और आर्थिक न्याय पर दिल से विश्वास रखते हों।

अपनी कविता 'जवाबे शिकवा' में अल्लामा इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा—

शोर है हो गए दुनिया से मुसलमाँ नाबूद
हम यह कहते हैं कि थे भी कहीं मुस्लिम मौजूद?
वज़ा में तुम हो नसारा तो तमद्दुन में हनूद
ये मुस्लमाँ हैं जिन्हें देख के शर्माएँ यहूद
यूँ तो सैयद भी हो, मिर्ज़ा भी हो, अफ़ग़ान भी हो,
तुम सभी कुछ हो, बताओ कि मुसलमान भी हो?

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक सद्क्रान्ति का नमूना हमारे सामने रख दिया, आदर्श आचरण का स्वरूप हमें दिखा दिया, फिर भी हम अनुसरण न करें तो दोष किसका है?

मुसलमानों का कर्तव्य सामाजिक व आर्थिक अन्याय से लड़ना और न्याय

की स्थापना के लिए प्रयत्न करना है। और यही काम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने किया।

ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) का आदर्श आचरण

व्यक्तिगत रूप से जो आचरण अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का था उसे एक आदर्श (Ideal) चरित्र कहना ही उचित होगा। वे बचपन से ही सच बोलनेवाले और अमानतदार थे, नुबुव्वत से पूर्व ही उनको अमीन की उपाधि मिल चुकी थी। उन्होंने अज्ञानता की अमानवीय रस्मों को आरम्भ से न माना। अत्याचार का भी साथ न दिया। सदा ग़रीबों और लाचारों की सहायता की। ऋण लिया तो ग़रीबों की सहायता के लिए लिया और जब भूखे रहे तो पेट पर पत्थर बाँध लिया। वादा किया तो उसे निभाया। हमेशा से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को सादगी पसन्द थी। एक बार हज़रत अली (रज़ि०) ने एक व्यक्ति को निमंत्रण दिया। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) भी आते और हमारे साथ भोजन करते तो अच्छा होता। हज़रत अली (रज़ि०) गए और नबी (सल्ल०) से निवेदन किया। आप (सल्ल०) आए, परन्तु दरवाज़े पर पहुँचे तो यह देखकर कि घर में दीवारों पर पर्दे लटक रहे हैं, लौट गए। हज़रत अली (रज़ि०) ने वापस होने का कारण पूछा तो नबी (सल्ल०) ने बताया कि पैग़म्बर की शान के विरुद्ध है कि वह किसी सज-धजवाले घर में प्रवेश करे। (अबू दाऊद, भाग–2, पृष्ठ 171)

एक बार नबी (सल्ल०) किसी युद्ध से वापस आए। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने स्वागत के तौर पर घर की दीवार पर पर्दा लटका दिया था। वे घर के अन्दर आए तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने सलाम किया। उन्होंने उत्तर न दिया, चेहरा मुबारक से अप्रसन्नता के चिह्न प्रकट होने लगे। इसके बाद वे पर्दे की ओर बढ़े और उसको फाड़ दिया और फ़रमाया :

"अल्लाह ने हमको ईंट-पत्थर को सजाने के लिए ये चीज़ें नहीं दी है।"

(अबू दाऊद, भाग 2, पृष्ठ 219)

एक बार हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के गले में सोने का हार देखा तो फ़रमाया :

"क्या तुमको यह अप्रिय न लगेगा जब लोग कहेंगे कि पैग़म्बर (सल्ल०) की बेटी के गले में आग का हार है।" (नसई, भाग 2, पृ० 143)

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) के हाथों में सोने के कंगन देखकर फ़रमाया :

"अगर इसको उतारकर 'वरस' के कंगन को ज़ाफ़रान से रंगकर पहन लेतीं तो अच्छा होता।" (नसई, भाग 2, पृष्ठ 143)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहा करते थे कि आदमी को इन कुछ चीज़ों के अतिरिक्त और किसी चीज़ का हक़ नहीं है—रहने के लिए एक घर, शरीर ढँकने के लिए एक कपड़ा और पेट भरने के लिए रूखी रोटी और पानी। (तिर्मिज़ी)

प्यारे नबी (सल्ल०) के घर में अक्सर उपवास (फ़ाक़ा) रहता और रात को तो वे और सारा घर प्राय: भूखा ही सो रहता। हज़रत आइशा (रज़ि०) बताती हैं कि पूरे जीवन अर्थात मदीना के जीवन-काल से मृत्यु तक अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कभी दो वक़्त भरपेट रोटी नहीं खाई। (सीरतुन्नबी, भाग 1)

ग़रीबों से हमेशा प्यार करते थे। हज़रत सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) अपने आपको ग़रीबों से ऊँचा समझते थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनसे कहा—

"तुमको जो सहायता और रोज़ी ईश्वर की ओर से मिली है वह उन्हीं ग़रीबों की बदौलत मिली है।" (सहीह मुस्लिम)

सहनशीलता और सहानुभूति का यह हाल था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नमाज़ पढ़ने मस्जिद जाते तो रास्ते में एक यहूदी औरत का घर पड़ता था। वह जान-बूझकर ऊपर से उनपर कूड़ा फेंक देती थी। वे कूड़े को झाड़कर सीधे आगे बढ़ जाते और नमाज़ पढ़ते। एक दिन बुढ़िया ने कूड़ा न फेंका तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उसके घर उसे देखने गए। वह दंग रह गई और बोली मैं तो आप पर कूड़ा फेंकती थी। आप मेरे पास कैसे आए। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा :

"आज तुमने कूड़ा न फेंका तो मैंने समझा कि तुम बीमार हो गई हो, इसलिए मैं तुम्हारा हाल मालूम करने आया हूँ।"

यही सहानुभूति जब राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर आई तो वह भी लाजवाब और अद्‌भुत थी। मक्का विजय के समय विजेता के रूप में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) जब मक्का वापस आए तो अपने भाषण में कहा—

"ऐ क़ुरैश के लोगो! अब अज्ञानता का घमण्ड और वंश पर गर्व करना अल्लाह ने मिटा दिया। सब लोग आदम की नस्ल से हैं और आदम मिट्टी से बने थे।" (सीरतुन्नबी, भाग—1)

यह था वह महान पैग़ाम जिसने सारे विश्व के लिए मानव-एकता की

आधारशिला उपलब्ध करा दी। भाषण के बाद उन्होंने जन समूह की ओर देखा तो अत्याचारी क़ुरैश थे। उनमें वे महत्त्वाकांक्षी भी थे जो इस्लाम को मिटाने में सबसे आगे थे, वे भी थे जिनकी ज़बानें अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर गालियों की बौछारें करती थीं। वे भी थे जिनके अस्त्र-शस्त्र ने रसूल (सल्ल०) के साथ गुस्ताख़ियाँ की थीं, वे भी थे जिन्होंने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के रास्ते में काँटे बिछाए थे, वे भी थे जो नसीहत के वक़्त उनकी एड़ियों को पत्थर मारकर लहूलुहान कर दिया करते थे, वे भी थे जो उनके ख़ून के प्यासे थे, वे भी थे जिनके हमलों की बाढ़ मदीना की दीवारों से आ-आकर टकराती थीं, वे भी थे जो मुसलमानों को तपती रेत पर लिटाकर उनके सीनों पर आग से दाग़ लगाया करते थे।

सारे संसार के लिए रहमत बनकर आए हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने उनकी ओर देखा और प्रभावी रूप से पूछा—

> "तुमको कुछ मालूम है, मैं तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करनेवाला हूँ?"
>
> वे लोग यद्यपि अत्याचारी थे, निष्ठुर थे, बेरहम थे, लेकिन स्वभाव को पहचाननेवाले थे। पुकार उठे, "तू शरीफ़ भाई है, और शरीफ़ भाई का बेटा है।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : "आज तुमपर कुछ इल्ज़ाम नहीं, जाओ तुम सब आज़ाद हो।"

क्या इस क्षमाशीलता, दयालुता, मानव-प्रेम, सहनशीलता और इस अनोखे दयाभाव का कोई उदाहरण इतिहास प्रस्तुत कर सकता है? और फिर यही नहीं मक्का के विरोधियों ने वहाँ से हिजरत करनेवाले मुसलमानों के घरों पर अधिकार जमा लिया था और उन्हें मक्का से निकाल दिया था अब वही हिजरत करनेवाले विजेता के रूप में मक्का वापस आए तो यह अवसर था कि उनके अधिकार उन्हें वापस दिए जाएँ। लेकिन ख़ुदा के पैग़म्बर का कमाल देखिए कि उन्होंने मुहाजिरों को आदेश दिया कि वे भी अपनी जायदाद से दस्तबरदार हो जाएँ। अर्थात अपने छिने हुए मकान जो हड़पनेवालों ने ले लिए थे उन्हें वापस न लें।

दुनिया में जब भी किसी गिरोह को किसी दूसरे गिरोह पर विजय प्राप्त हुई तो विजेता ने लूटमार, हत्या, छीन-झपट, अत्याचार और हिंसा अवश्य किया है। पराजितों की जायदादों पर अपना अधिकार जमा लिया है और उनके साथ बेदर्दी से पेश आए हैं। यह एक अनोखा उदाहरण है कि जहाँ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और उनके साथियों ने एक ओर तो बेहद अत्याचार सहे, मक्का छोड़कर

चले गए, जायदादों से हाथ धोया और फिर जब विजेता बनकर वापस आए तो अत्याचार करना तो दूर की बात है, अपनी छिनी हुई जायदादें भी वापस नहीं लीं। यह आचरण केवल सारे संसार के लिए रहमत बनकर आए हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का ही हो सकता है। Michael Hart ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति घोषित किया तो ग़लत नहीं किया।

एक सामाजिक विश्लेषण

ऊपर मैंने आरम्भ में इस्लाम से पूर्व के अरब समाज का C. Wright Mills के दृष्टिकोण के आधार पर तीन बिन्दुओं पर विश्लेषण किया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के द्वारा जो व्यक्तिगत और सामाजिक क्रान्ति आई थी, उसके बाद अरब समाज का उन्हीं तीन बिन्दुओं पर विश्लेषण किया जाए तो इस प्रकार होगा—

1. समाज से असमानता समाप्त हो गई और मानव एकता और बराबरी पर आधारित समाज बन गया। समाज के विभिन्न भागों में शोषण और विरोधपूर्ण सम्बन्धों के स्थान पर शोषणविहीन और न्यायसंगत सम्बन्ध स्थापित हुए। काले-गोरे और ऊँच-नीच का भेद मिट गया।

2. मानव इतिहास में इस नए समाज को अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त हुआ। दौलत को मानवता की तुलना में श्रेष्ठता देने के बजाए वह समाज मानवता और ईशभय को दौलत पर श्रेष्ठता देने लगा। मानवता के विकास का रास्ता खुल गया।

3. नए समाज में जो लोग सत्ता में आए वे मानवतावादी, विनीत, दयालु, मानव-समानता के ध्वजावाहक, शोषण के विरोधी और मानवता के सच्चे मित्र थे। असत्य से कोसों दूर और सत्य की एक जीती-जागती तस्वीर थे।

यह था वह सम्पूर्ण बदलाव जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने जीवन के बीस-बाइस सालों में पेश किया।

आज दुनिया को इसी परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे आज का यह चीख़ता और व्याकुल मानव-समाज ऊँच-नीच और अज्ञानता के भेद-भाव से मुक्ति पा सके और चारों ओर केवल न्याय, परस्पर प्रेम और भाईचारे की रौशनी नज़र आए।